काव्य - गुण :- काव्य सर्जना में कुछ तत्व सक्रिय रहते हैं, जिनका उपयोग कवि करता है। शब्द और अर्थ तो

काव्य के शरीर होते है तथा रस ही उसकी आत्मा के स्थान पर रहता है। रस ही काव्य में मुख्य होता है और 'गुण' इस मुख्य रस के ही धर्म होते हैं और काव्य में रस के साथ गुण का साक्षात् सम्बन्ध रहता है।

रस को काव्य की आत्मा और अलंकारों को कविता का बाह्य सौंदर्य बढानेवाला धर्म स्वीकारने वाले आचार्यो ने गुण का उल्लेख रस और अलंकार दोनों के संदर्भ में किया है। आचार्य मम्मट ने गुण की परिभाषा दी है -

"ये रसस्यादिनो धर्मा: शौर्यादय इवात्मन:।
उत्कर्ष हेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणा:॥"

अर्थात् जिस तरह मनुष्य के शरीर में शौर्य आदि गुणों की स्वाभाविक स्थिति होती है, वैसे ही कविता में रस को उत्कर्ष प्रदान करनेवाले धर्म को गुण कहा जाता है।

'अग्निपुराण' में कहा गया है कि किसी नारी के शरीर पर स्वाभाविक सौंदर्य आदि गुणों के अभाव में जिस तरह हार आदि आभूषण भार लगते हैं वैसे ही अलंकारों से युक्त होकर भी काव्य गुण के अभाव में आनंद प्राप्त नहीं हो सकता। आचार्य दंडी ने गुण को काव्य का प्राण रूप माना है। गुणों की संख्या के बारे में साहित्यशास्त्रियों के बीच प्रारंभ में मतभेद रहा है। लेकिन अंतत: काव्य गुणों की संख्या दस मानी है।

1) श्लेष 2) प्रसाद 3) समता 4) समाधि 5) माधुर्य 6) ओज 7) सुकुमारता 8) अर्थव्यक्ति 9) उदारता 10) कान्ति।

अधिकांश : आचार्यों ने (दंडी, मम्मट, कुंतक, हेमचंद्र, विश्वनाथ, आनंदवर्धन आदि' माधुर्य, ओज एवं प्रसाद इन तीन गुणों को प्रमुख माना है। आचार्य मम्मट तथा विश्वनाथ ने इन्हीं तीन गुणों में अन्य का समावेश स्वीकृत किया है। हिन्दी के अधिकतर आचार्यों ने भी इन्ही तीन गुणों को महत्त्वपूर्ण माना है। इन गुणों का परिचयात्मक विश्लेषण निम्नलिखित है।

2.3.2.1 माधुर्य गुण :

जिस काव्य की रचना से अन्त:करण आनंद से भर जाय, वहाँ माधुर्य गुण होता है। कविता में माधुर्य गुण के समावेश के कारण श्रृंगार आदि रसों की प्रस्तुती में आकर्षण का समावेश होता है। इसमें मधुरता व्यंजक शब्द तथा वर्ण का प्रयोग किया जाता है। ताकि कविता में लगातार रसात्मकता और मधुरता का बोध होता रहे।

माधुर्य गुण की रचनात्मक विशेषताएँ निम्नलिखित हैं।

(अ) इसमें ट, ठ, ड, ढ - का प्रयोग न हो।

(ब) वर्गान्त्य वर्णो के प्रयोग से सुकुमारता बढती है।

(क) र, ण - वर्ण भी माधुर्य - व्यंजक होते हैं।

(ड) इसमें बहुत छोटे-छोटे समास प्रयुक्त हो।

उदा. *''कंकन किंकिन नूपुर धुनि सुनि।*
कहत लखन सन राम हृदय गुनि॥
मानहु मदन दुंदुभी दीन्ही।
मनसा विश्व विजय कहँ कीन्ही॥ (रामचरितमानस)

2.3.2.2 ओज गुण :

जिस काव्य गुण के कारण चित्त में स्फूर्ति एवं मन में तेज उत्पन्न हो, उसे ओज कहा गया है। ओजपूर्ण कविता के सुनने मात्र से मन में जोश और आवेग उत्पन्न हो जाता है। इसी कारण वीर, बीभत्स और रौद्र जैसे रसों के लिए ओजगुण की योजना की जाती है। वक्र अर्थवाले लम्बे सामासिक पदों और कठोर वर्णों से बने काव्य द्वारा ओज गुण की प्रस्तुती की जाती है।

ओज गुण की रचनात्मक विशेषताएँ निम्नलिखित हैं।

(अ) ऊंपर-नीचे रेफ युक्त वर्णों का प्रयोग हो।
(ब) ट, ठ, ड, ढ तथा श, ष वर्णों का प्रयोग ओजवर्धक होता है।
(क) इसमें दीर्घ समासवाली रचना होनी चाहिए।
(ड) इसकी पदयोजना या रचना औचित्यपूर्ण हो।

उदा. *''इंद्र जिमि जंभ पर बाडव सुअंभ पर*
रावन-सदंभ पर रघुकुल राज है,
पौन बारिबाह पर, संभु रतिनाहु पर,
ज्यों सहस्त्रबाहु पर राम द्विजराज हैं। (भूषण)

2.3.2.3 प्रसाद गुण :

आचार्य विश्वनाथ ने कहा है कि सूखे ईंधन में अग्नि के समान या धुले हुए वस्त्र में पानी की भाँति तत्काल मन में व्याप्त हो जानेवाला गुण प्रसाद है। यह गुण ऐसा सरल और सुबोध अर्थ व्यक्त करता है कि पंक्तियों से गुजरते ही कविता साकार हो उठती है।

प्रसाद गुण की रचनात्मक विशेषताएँ निम्नानुसार हैं।

(अ) प्रसाद गुण के लिए कोई वर्ण संघटना नहीं है।
(ब) प्रसाद गुण के लिए कोई वर्ण त्याज्य या सीमित नहीं।
(क) सभी रस में तत्काल अर्थ प्रदान करता है।
(ड) प्रसाद गुण व्याप्त एवं प्रसन्नता देता है।

उदा. *''चारूचन्द्र की चंचल किरणे, खेल रहीं हैं जल-थल में।*
बिमल चाँदनी बिछी हुई है अवनि और अंबरतल में।

पुलक प्रकट करती है धरती हरित तृणों की नोकों से।
मानो झीम रहे हैं तरू भी मन्द पवन के झोंको से॥'' (पंचवटी)

2.3.3 काव्यदोष :

आचार्य भरत ने जब महान निर्दोषिता को काव्य गुण की संज्ञा दी थी, तभी दोष रहित काव्य सृजन की पहल की थी। आचार्य भामह ने लिखा है कि काव्य सृजन न करना कोई अपराध नहीं है, लेकिन सदोष काव्य रचना करना तो साक्षात मृत्यु है।

काव्य में दोषों को टालना कविता की प्रारंभिक अनिवार्यता के रूप में अनेक साहित्यशास्त्रियों ने मान्यता दी है। मम्मट ने तो काव्य की परिभाषा में ही दोषों का विरोध किया है -

''तद्दोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृति: पुन: क्वापि।''

आचार्य भरत एवं वामन ने काव्य दोष को काव्य गुण का विपर्य माना है। काव्य दोषों की संख्या पर काफी विचारविमर्श विविध विद्वानों ने किया है। आचार्य विश्वनाथ ने दोष की परिभाषा देते हुए लिखा है - ''रसापकर्षका दोषा:'' मतलब 'दोष' वे हैं जो रस या काव्य के आत्मतत्त्व के अपकर्षक होते हैं। लेकिन सभी मतों का सार रूप स्वीकार करे तो आज काव्यदोष के तीन भेद स्वीकार किए गये हैं - शब्ददोष, अर्थदोष, रसदोष।

2.3.3.1 शब्द दोष (पद दोष) :

काव्य में आनंद प्रदान करनेवाला प्रारंभिक अवयव शब्द या पद होता है। इस नाते यदि शब्दों के संघटना में ही दोष हो, तो संपूर्ण कविता का प्रभाव तथा आनंद समाप्त होता है। इसीलिए जहाँ शब्द या पद रचना और प्रयोग के कारण काव्यार्थ की प्रतीति में बाधा उत्पन्न होती है, वहाँ पद्गत दोष या पददोष कहा जाता है। आचार्य मम्मट ने पददोष के १६ प्रकार बताए हैं। उनमें से कुछ दोषों का विवेचन निम्न प्रकार है -

(अ) श्रुति कटुत्व : काव्य रचना करते समय सुनने में मधुर शब्दों का प्रयोग करना चाहिए। रस के विपरित कानों को खटकनेवाले कठोर वर्ण प्रयोग से श्रुति कटुत्व दोष होता है।

उदा. *''ठाट है सर्वत्र घर या घाट है।*
लोक-लक्ष्मी की विलक्षण हाट है।''

इन पंक्तियों में ट, ठ - कठोर वर्ण प्रयोग के कारण श्रुतिकटुत्व आया है।

(ब) अश्लीलता : यह दोष किसी ऐसे पद के प्रयोग के कारण होता है, जिससे अभिप्रेत अर्थ निकलने के साथ ही कोई लज्जा, घृणा और अमंगलकारी अर्थ भी निकलते हैं।

उदा. *''गिर जाय कहीं यदि किसी से मूल्यवान वस्तु*
लोभ से उठाना उसे चाटना है नाक का।''

यहाँ 'नाक का चाटना' घृणा व्यंजक होने के कारण अश्लीलता प्रकट करता है।

शब्द या पददोषों के माध्यम से यही सूचित होता है कि कविता में सरल, सहज एवं बोध गम्य शब्दों का उपयोग होना चाहिए।

2.3.3.2 अर्थगत दोष (अर्थ दोष) :

काव्य में शब्दों का अर्थ-ग्रहण ही आनंद एवं प्रभाव उत्पन्न करता है। जहाँ अर्थ ग्रहण में बाधा होती है, वहाँ अर्थ दोष पाए जाते हैं। आचार्य मम्मट ने २३ प्रकार के अर्थ दोषों का उल्लेख किया है। अर्थ समझने में किसी प्रकार का कष्ट नहीं होने चाहिए। अर्थ में परस्पर विरोध नहीं होने चाहिए। अर्थ प्रकटीकरण में नवीनता आनी चाहिए। अर्थ को जानलेने पर चित्त में न तो अमंगल की भावना होनी चाहिए और न उद्वेग ही उत्पन्न होना चाहिए।

आचार्य विश्वनाथ के मतानुसार किसी पद के मुख्य अर्थ के अनुपकारी होने पर अपुष्ट दोष होता है। जिस पद की अनुपस्थिति पर भी अर्थ को हानी नहीं पहुँचती हो।

उदा. *"सारे उपवन के विशाल वायुमण्डल में*
प्रेमी प्रीति-संभव के मंगल मनाते हैं।"

इस पद में विशाल विशेषण निरर्थक है, क्योंकि वायुमंडल तो विशाल होता ही है। जहाँ एक ही शब्द और अर्थ की बार-बार आवृत्ति हो, वहाँ पुनरुक्त अर्थ दोष होता है। इससे कवि के शब्द दारिद्र्य का पता चलता है।

उदा. *"धन्य है कलंक हीन जीना एक क्षण का*
युग-युग जीना सकलंक धीक्कार है।"

स्पष्ट है कि पुनरूक्त अर्थदोष के कारण कविता वे प्रभाव और आनंद में बाधा उपस्थित हुई है।

2.3.3.3 रसगत दोष (रस दोष) :

रस कविता का अनिर्वचनीय आनन्द है, लेकिन जहाँ रसास्वाद में बाधा उत्पन्न हो जाती है - वहाँ विद्वानों ने विविध रस दोषों को स्वीकृत किया है। वैसे देखा जाय तो कविता में रस का स्पष्ट उल्लेख अपने आप में एक दोष है। कई कवियों ने रस के स्थायी, संचारी और व्याभिचारी भावों को स्वयं वर्णित कर रस के स्वाभाविक उद्रेक को बाधित किया है। आचार्य मम्मट ने तेरह प्रकार के रस दोषों की चर्चा की है। स्वशब्दवाच्यता तो सर्वप्रमुख रस दोष है।

उदा. *"आह कितना सकरूण मुख था,*
आर्द्र सरोज अरुण मुख था।"

इन पंक्तियों में करुण रस का कवि स्वयं उल्लेख करता है।

जहाँ रस, स्थायीभाव या व्यभिचारी भाव की पुष्टि उनसे सम्बन्धित भावों का वर्णन किए बिना ही उनके शब्दशः कथन से की जाए वहाँ रसदोष होता है।

उदा. *"ज्यों ही चूमा प्रिय ने उसको*
लज्जा मन आयी।"

रसों के पारस्परिक विरोध की एक पंक्ति -

उदा. *''इस पार प्रिये तुम हो मधु है*
उस पार न जाने क्या होगा?''

कुल मिलाकर दोषपूर्ण काव्य निंदा का पात्र होता है, चाहे उसमें शब्द, अर्थ और रसदोष में से कोई भी एक हो। कविता का अपकर्ष करनेवाले दोषों से बचकर ही कोई श्रेष्ठ कवि हो सकता है।